

मिली। देश भर के आकाशवाणी केंद्रों से चेक आये।

‘हवामहल’ कार्यक्रम पंद्रह मिनट का होता था। आगे-पीछे की उद्घोषणाओं में लगने वाले समय को निकाल दें, तो उसके लिए लिखे जाने वाले नाटक की स्क्रिप्ट तेरह या चौदह मिनट की होती थी। नाटक का विषय प्रायः हल्का-फुल्का और हास्य-व्यंग्य वाला होता था। पहले-पहल मुझे यह काम बहुत आसान लगा था, लेकिन धीरे-धीरे मैंने पाया कि रेडियो नाटक लिखना एक विशेष प्रकार के कौशल, परिश्रम और अनुशासन की माँग करता है।

रेडियो नाटक मंचीय अथवा नुक्कड़ नाटक के लेखन से ही नहीं, टेलीविजन और सिनेमा के लिए किये जाने वाले पटकथा लेखन से भी बहुत भिन्न प्रकार का लेखन है। मंच, नुक्कड़, टीवी और मूवी के लिए लिखते समय आप दृश्य और श्रव्य दोनों अभिव्यक्ति-रूपों का इस्तेमाल करते हैं, जबकि रेडियो नाटक में आपको सभी कुछ शब्दों और ध्वनियों के माध्यम से व्यक्त करना होता है। रेडियो नाटक लिखते समय ही मैंने जाना कि पात्रों की मनोदशाओं में और नाटक के ‘दृश्यों’ में परिवर्तन दिखाने के लिए ‘पॉज’ और अंतराल संगीत का क्या महत्त्व होता है। और यह भी कि ‘हाँ’, ‘हूँ’ और ‘अच्छा’ जैसे शब्दों का प्रयोग प्रसंगानुसार कितने भिन्न अर्थों में किया जा सकता है। हालाँकि अंतराल या पार्श्व संगीत और साउंड इफेक्ट देने का काम रेडियो नाटक का निर्देशक या प्रोड्यूसर करता है, लेकिन आपको भी मालूम होना चाहिए कि कहाँ कैसा संगीत होना चाहिए और कहाँ कैसा ध्वनि प्रभाव उत्पन्न किया जाना चाहिए।

मैंने मार्क ट्वेन की लंबी कहानी ‘दि मैन दैट करप्टेड हैडलीबर्ग’ का नाट्य रूपांतरण आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों के लिए किया था। उसका रेडियो नाट्य रूपांतर सुनकर दूरदर्शन के एक प्रोड्यूसर ने मुझसे कहा कि मैं उसके लिए उस कहानी का टीवी नाट्य रूपांतर कर दूँ। मुझे लगा, इसमें क्या मुश्किल है। रेडियो के लिए लिखी गयी स्क्रिप्ट में ही कुछ फेरबदल कर देने से काम चल जायेगा।

लेकिन लिखते समय पता चला कि केवल श्रव्य नाटक लिखना और दृश्य-श्रव्य नाटक लिखना दो सर्वथा भिन्न प्रकार की कलाएँ हैं। उस अनुभव से मैंने नाट्य लेखन के बारे में कई नयी बातें सीखीं।

रेडियो के लिए नाटक लिखने का मेरा अनुभव आगे चलकर ‘पेपरवेट’ और

जो कहा जाये, वह संक्षेप में और स्पष्ट रूप में कहा जाये, ताकि उसमें कुछ भी फालतू या अनावश्यक न लगे और समझने में कोई दुविधा या दुरुहता पैदा न हो; कि उसमें कला तो अवश्य हो, पर कलाबाजी न हो; कि भाषा साहित्यिक तो रहे, पर आम बोलचाल की भाषा से बहुत दूर न चली जाये; इत्यादि। विविध भारती के लिए किये जाने वाले रेडियो नाटकों के लेखन के अनुभव से सीखी गयी इन बातों का ध्यान मैं अपनी कहानियाँ, उपन्यास, निबंध, संस्मरण आदि लिखते समय भी रखता हूँ।

रेडियो नाटकों में धारावाहिकों की शुरुआत मैंने ही की थी। एक दिन बातों ही बातों में मैंने सत्येंद्र शर्त से कहा, “भाई साहब, कहानियों के नाट्य रूपांतरों की तरह क्या उपन्यासों के नाट्य रूपांतर नहीं किये जा सकते? जो कई किस्तों में, धारावाहिक रूप में प्रसारित किये जा सकें?” शर्त जी को आइडिया पसंद आया और मैंने उनके लिए, यानी विविध भारती के लिए, दो उपन्यासों के रेडियो नाट्य रूपांतर किये, जो धारावाहिक रूप से प्रसारित हुए। एक उपन्यास था यशपाल का ‘मनुष्य के रूप’ और दूसरा भगवती चरण वर्मा का ‘अपने खिलौने’।

मैं बंबई (आज की मुंबई) में भी रहा हूँ। पहली बार 1967-68 में स्वतंत्र लेखक के रूप में और दूसरी बार 1970-71 में ‘नवनीत’ के सहायक संपादक के रूप में। स्वतंत्र लेखन से पैसा कमाने के लिए मैं पत्र-पत्रिकाओं में लिखने और अनुवाद करने के अलावा आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए नाटक लिखने का काम भी करता था। मैं अपने पहले वाले बंबई प्रवास में आकाशवाणी जाकर कवि नरेंद्र शर्मा से मिला, जो उस समय वहाँ के केंद्र निदेशक थे। उन्होंने मेरे रेडियो नाटकों की प्रशंसा करते हुए अपने केंद्र के लिए भी नाटक लिखने को कहा और एक सज्जन को अपने कमरे में बुलाकर उनसे मेरा परिचय करा दिया।

उन सज्जन का अजीब-सा नाम था। भृंग तुपकरी। वे विविध भारती में थे। उन्होंने मेरे द्वारा किये गये ‘मनुष्य के रूप’ और ‘अपने खिलौने’ उपन्यासों के मेरे

रेडियो नाटक
लिखते समय
आपको अपने श्रोताओं
का ध्यान बराबर रखना
पड़ता है कि नाटक
प्रबुद्ध और सामान्य दोनों
तरह के श्रोताओं को
पसंद आये; कि वह न
तो इतना बौद्धिक हो कि
सामान्य श्रोताओं के
पल्ले ही न पड़े और न
ही वह इतना हल्का-
फुल्का हो कि प्रबुद्ध
श्रोताओं को सस्ता लगे

‘भारत-भाग्य-विधाता’ जैसे मंचीय नाटकों तथा ‘गिरगिट’ और ‘हरिजन-दहन’ जैसे नुक्कड़ नाटकों के लेखन में तो मेरे काम आया ही, अन्य विधाओं के लेखन में भी बहुत काम आया। रेडियो नाटक लिखते समय आपको अपने श्रोताओं का ध्यान बराबर रखना पड़ता है कि नाटक प्रबुद्ध और सामान्य दोनों तरह के श्रोताओं को पसंद आये; कि वह न तो इतना बौद्धिक हो कि सामान्य श्रोताओं के पल्ले ही न पड़े और न ही वह इतना हल्का-फुल्का हो कि प्रबुद्ध श्रोताओं को सस्ता लगे; कि उसमें